॥ ओ३म् ॥

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

योगानुक्रमणिका

लेखक

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य
श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ

प्रकाशक

आर्ष योग विद्यापीठ खरखौदा, मेरठ [उ० प्र०]

प्रथम वार १०००] सम्वत् २०२४ वि० १९६७ ई० [मूल्य १ रूपया

[सर्वाधिकार लेखक के आधीन हैं ।]

-:पता:-
स्वामी आत्मानन्द तीर्थ
आनन्द निकेतन
खरखौदा, मेरठ [उ० प्र०]

ग्रन्थ-परिचय:

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रयोजन लेखक ने इसी पुस्तक की भूमिका में स्पष्ट किया है.

यद्यपि **ईसाई-वर्ष 1967** में लिखित "**योगानुक्रमणिका**' के लेखक स्वामी आत्मानन्दतीर्थ जी ने इस ग्रन्थ में कई अनार्ष बातों का उल्लेख किया है, जिनकी जानकारी उपयोगी है, अतः इस ग्रन्थ को पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है. जैसा की उन्होंने **वर्ष 2000** में आर्यसमाज, हाजीपुर (जन्दाहा) के वार्षिकोत्सव में बताया था की, "*स्वामी दयानन्द के तो केवल 12 वर्ष नष्ट हुए थे, मैंने तो अपने जीवन के 60 वर्ष अनार्ष योगाभ्यास में नष्ट कर दिया, जिनके करने से अत्यंत न्यून सफलता ही मिल पाती है.*"

जो भी हो, **सत्तर के दशक (1970s) में लेखक ने अनार्ष पद्धति का पूर्णतः परित्याग कर, महर्षि पतञ्जलि प्रोक्त योगदर्शन का अङ्गीकार कर लिया**, और १९८० के दशक में परमात्मा के साक्षात्कार को उपलब्ध हुए. स्वामी विरजानन्द को पूर्वमार्ग (बङ्क-नाल) से प्राण-संरोहण सिद्ध था, स्वामी दयानन्द सरस्वती को **पश्चिम-मार्ग (मेरुदण्ड)** से प्राण-संरोहण सिद्ध था, किन्तु स्वामी आत्मानन्द तीर्थ को पूर्व एवं पश्चिम दोनों मार्गों से प्राण-संरोहण सिद्ध था.

ईसाई-वर्ष 1984 एवं ईसाई-वर्ष 1991 में प्रकाशित पुस्तक क्रमशः योग-विवेक एवं योगदर्शन (सुप्रभा-टीका) में स्वामी आत्मानन्द तीर्थ ने बन्ध एवं मुद्रा आदि अनार्ष क्रियाओं का प्रबल खण्डन किया.

(आपकी सेवा में प्रस्तुत है, यह पुस्तक. कृपया उपयोगी बातों का ग्रहण एवं अनुपयोगी बातों का त्याग करके मेरे प्रयत्न को सार्थक कीजिये, धन्यवाद !!!) - आर्य स्वयंसेवक

ग्रन्थकार द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थ यहाँ से download किये जा सकते हैं:

योग-विवेक:

http://www.mediafire.com/file/qv9svszaoktqjrz/YogaVivek_AtmanandTeerth_68p_1984yr.pdf

योगदर्शन (सुप्रभा-टीका):

http://www.mediafire.com/file/wnhapve7be48u8n/YogDarshan_Swami_Atmanand_Teerth.pdf

आदिम सत्यार्थ प्रकाश के महत्वपूर्ण संस्मरण एवं आर्य समाज का रजिस्ट्रेशन:

http://www.mediafire.com/file/qhitezo67cy3fca/Aadim_Satyarth_Prakash_92p_1974yr.pdf

अभिनव संस्कार-विधि:

http://www.mediafire.com/file/thu81nn2r8s5tco/Abhinav_Sanskar_Vidhi_Part01_210p_1996yr.pdf

http://www.mediafire.com/file/kyzh4o49hpp04ky/Abhinav_Sanskar_Vidhi_Part02_255p_1996yr.pdf

वेदान्त-विवेक:

http://www.mediafire.com/file/65m6n1l13oowsa9/Vedaant_Vivek_44p_1980yr.pdf

पूज्यपाद श्री १००८ श्रीमत्परमहंस
परिब्राजकाचार्य योगिराज श्री
महात्मा आनन्द स्वामी जी
महाराज

पूज्यपाद श्री १००८

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य, योगिराज श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की महत्वपूर्ण पवित्र सम्मतिः—

मनुष्य शक्ति का केन्द्र है और यह शक्ति इसके अन्दर विद्यमान है। मानव जीवन की सफलता इस शक्ति के विकास में है। इस शक्ति के विकास ही को योग विद्या कहते हैं। योग के नाम पर आधुनिक काल में कुछ ऐसी बातें प्रचलित हो गई हैं जो योग विद्या को बदनाम कर रही हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जनता के समक्ष योग सम्बंधी हर प्रकार की धारणा को रख दिया जाये, फिर जिसकी प्रकृत्ति के अनुकूल जो क्रिया हो वह उसे अपना कर शक्ति का विकास कर लें। स्वामी आत्मानंद जी तीर्थ ने अपने अनुभव तथा योग शास्त्रों के अध्ययन से जो प्राप्त किया है उसे बड़े संक्षेप से इस पुस्तक में अङ्कित कर दिया है। इसके एक एक पन्ने को बार २ पढ़कर मनन करके फिर

उसको अपने जीवन में ढालना चाहिये। कितने ही वर्षों के परिश्रम के पश्चात् स्वामी आत्मानंद जी ने यह दुर्लभ जानकारी हमारे समक्ष रखी है जिसके लिये योग प्रेमी उनका धन्यवाद करेंगे।

आनन्द स्वामी सरस्वती
१ वैशाख २०२४ वि०

—: लेखक :—

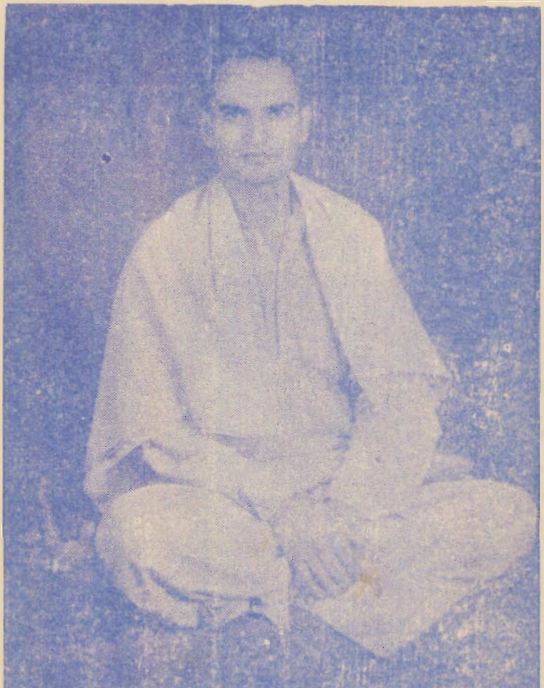

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य
श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ

समर्पण

मैंने इस पुस्तक में योग साधन सम्बंधी समस्त क्रियाओं को अत्यन्त सरल एवम् सूक्ष्म रूप से संग्रह करने का यत्न किया है। अपनी इस लघु कृति को आनंदमय जगदीश्वर की सृष्टि के उस उदारमना मानव शरीरी दिव्य प्राणी को मिती माघ कृष्णा चतुर्थी सोमवार सम्वत् १९१६ विक्रमी तदनुसार १८ जनवरी १९६० ई० के पावन दिवस के उपलक्ष्य में सादर समर्पित करता हूँ।

[स्वामी] आत्मानंद तीर्थ

॥ ओ३म् ॥

॥ सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

भूमिका

वास्तव में यह ग्रन्थ योग मार्ग का पूर्ण स्पष्टीकरण न करके योग मार्ग के समस्त विभिन्न साधनों की सूची मात्र ही प्रस्तुत करता है, तथापि बुद्धिमान साधकों के लिये मैंने इस ग्रन्थान्तर्गत समाधि प्राप्त करने के साधन पूर्णतः स्पष्ट कर दिये हैं, जो योगशास्त्र प्रणीत होते हुये अनुभूत भी हैं। योगाचार्य महर्षि पतञ्जलि ने स्वयं योग सूत्रान्तर्गत (योग दर्शन में) विभूति पाद में स्पष्ट लिखा है कि "उदान वायु पर अधिकार कर लेने के उपरान्त योगी का शरीर अत्यन्त हल्का हो जाता है। कीचड़, जल तथा कांटे उसे छू भी नहीं सकते हैं।

आज जबकि संसार में भौतिक विज्ञान का युग है, अनेक व्यक्ति स्वप्रतिपादित सिद्धांतों द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार के साधन प्रस्तुत कर रहे हैं परन्तु सभी कुछ सीमा तक पथ प्रदर्शन करने के पश्चात् साधक को अन्धकार

में डाल देते हैं। वास्तविक कल्याणमय मार्ग उनसे बहुत दूर है। जागृति की इस बेला अमृतमय बेला में भी इस का निराकरण नहीं हो सका है। आज भी अनेक व्यक्ति सत्य और दैवी वैभव की लालसा में निज गृहों का परित्याग कर काषाय ग्रहण कर लेते हैं अथवा अन्य मार्गों का अवलम्ब ग्रहण कर मूढ़वत जीवन नष्ट किया करते हैं। इससे अधिक भारत का दुर्भाग्य और क्या होगा ? जो क्रियात्मक ज्ञान (योग सम्बंधी आध्यात्मिक विद्या) भारत के घर घर में परिप्लावित था, परम पवित्र योगमयी पराविद्या जिस ज्ञान की जननी थी, वही ज्ञान आज भारत से लुप्त प्रायः हो गया है। हाँ इस विद्या के वेत्ता [विचारक] तिब्बत प्रदेशस्थ कैलाश पर्वत की गुफाओं तथा मानसरोवर तटीय ऊना पर्वत और मान्धाता पर्वत की निर्जन कन्दराओं में यदा कदा एकाकी समाधिस्थ दृष्टिगोचर हो जाते हैं। विन्ध्यारण्य के नर्मदा तटीय प्रदेश, आबू के पर्वतीय भाग एवम् गुहाओं में भी यत्र तत्र उनके दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे महान आत्मवेत्ता और योगी चैत्र मास की वसंत ऋतु में पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र के प्रकाश में कभी २ पर्वतीय बूटियों

का रसास्वादन करते हैं और उस महान चैतन्य की महानता का रसास्वादन करते हैं।

मैंने एक दण्डी सन्यासी से सन्यास ग्रहण किया था, जो स्वयं दण्ड त्याग कर वेदों का अनुभूत ज्ञान संचय कर रहे थे। योग विद्या की लालसा में मैंने देश देशांतरों का भ्रमण किया। इस काल में अनेक लोगों ने मुझे अपना शिष्य प्रचारित करना चाहा, परन्तु सत्य सिद्धांत उनसे दूर था जो प्रभु की असीम कृपा से मुझे प्राप्त था।

दीर्घकालीन विचार के पश्चात ही यह "योगानुक्रमणिका" नामक सूक्ष्म ग्रंथ निर्मित हुआ है, यद्यपि इससे पूर्व लगभग २०० पृष्ठों का "योगामृत रहस्य" नामक ग्रंथ लिखा जा चुका था, तथापि सूक्ष्मता की दृष्टि से इसे लिखना आवश्यक प्रतीत हुआ।

यथार्थता तथा क्रियात्मक ज्ञान की दृष्टि से ही यह ग्रंथ उपयोगी हो सकेगा। आलोचना रूपी वाग्चातुर्य का क्षार इसे महत्वहीन ही बनायेगा। प्रत्येक अनुभवी व्यक्ति अपने द्वारा दिये गये अनुभवपूर्ण परामर्श के लिये धन्यवाद का आदर सहित अधिकारी है।

भवदीय

[स्वामी] आत्मानंद तीर्थ

चन्द्रवार, १८ मार्च १९५६ ईसवी।

श्री यमुना प्रसाद चौधरी
॥ ओ३म् ॥
सरस्वती विहार
क्रमांक ....
छोटी ..., मुजफ्फरपुर

॥ औ३म् ॥

॥ सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

प्रथम अध्याय

योग के भेद

- हठयोग
  - स्वर योग
  - नाद योग
  - ध्यान योग
- राजयोग [वेदान्त मार्ग, ज्ञान मार्ग]

हठ योग का अर्थः—

हकारं उच्यते सूर्यः, ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्याचन्द्रमसौ योगाद्‌ हठ योगो निगद्यते ॥

(योगतत्वोपनिषद्‌)

भावार्थ––हकार सूर्य (दांये) स्वर तथा ठकार चन्द्र (बांये) स्वर का बोधक है । सूर्य तथा चन्द्र स्वर मिलकर हठ योग होता है ।

हठ योग के अङ्ग

- मंत्र योग
- हठ योग
- लय योग
- राज योग

मंत्र योग का ज्ञान होने पर श्वास प्रश्वास की गति सम हो जाती है, उस दशा को हठ योग कहते हैं। अनहद नाद की अनुभूति होने, मन की लयावस्था होने तथा कुण्डलिनी शक्ति के उत्थान होने को लय योग कहते हैं। प्राणों की पूर्ण लयावस्था का नाम राजयोग है। यही निर्विकल्प समाधि है।

हठ योग के साधन के अङ्ग

१-यम, २-नियम, ३-आसन, ४-प्राणायाम, ५-प्रत्याहार, ६-धारणा, ७-ध्यान, ८-समाधि ।

१-यम ५ हैं।

- अहिंसा,
- सत्य,
- अस्तेय,
- ब्रह्मचर्य,
- अपरिग्रह

२-नियम ५ हैं।

- शौच,
- सन्तोष,
- तप,
- स्वाध्याय,
- ईश्वर प्रणिधान

शौच के भेद

बाह्य   आभ्यान्तरीय

आभ्यान्तरीय शौच के भेद

१-नेति, २—धौति, ३--न्यौलि, ४--बस्ति, ५--कपाल-भाति, ६--त्राटक ।

नेति के भेद

नेति,   जल नेति

धौति के भेद

अन्तर्धौति,   दन्तधौति,   हृद्धौति,   मूलशोधन धौति

अ. अन्तर्धौति के भेद

१--वारि सार धौति २--बहि्नसार धौति ३—वातसार धौति, ४-बहिष्कृत धौति (शङ्ख प्रक्षालन धौति)

अ—बहिष्कृत धौतिः—यह क्रिया चार घटिका पर्यन्त (१ घन्टा ३६ मिनट) प्राण संयमन करने की सामर्थ्य होने पर सम्पन्न की जाती है। (किसी किसी ग्रन्थ में ४ घटिका के स्थान में यामार्द्ध शब्द लिया गया है) शङ्ख नामक नाड़ियां (त्रिवलियां या अन्तड़ियां) कण्ठ पर्यन्त जल में मुख द्वारा बाहर निकाल कर शुद्ध जल से धोकर पुनः मुख से प्रविष्ट करा दी जाती हैं। (यह क्रिया इसी कारण ग्रीवा पर्यन्त जल में की जाती है।

आ. दन्त धौति के भेद

- दन्तमूल धौति,
- जिह्वामूल धौति,
- कर्णरन्ध्र धौति
- कपाल शोधन धौति

इ—हृद्धौति के भेद

- दण्ड धौति, या ब्रह्म दातौन
- वमन धौति (कुञ्जर)
- वास धौति

उ- मूल शोधन धौति

वायु बस्ति, जल बस्ति शुष्क बस्ति (गणेश क्रिया)

टिप्पणी :—उपरोक्त षट कर्म योग साधन में अनिवार्य नहीं हैं । तथापि समाधि की प्राप्ति में सहायक अवश्य हैं ।

३- आसन प्रकरण:--

आसन मुद्रायें

टिप्पणी:--आसनों के अनेकों भेद हैं जो स्वास्थ्य के लिये लाभदायक हैं ।

आसन (मुख्य)

सिद्धासन पद्मासन

मुद्रायें १० हैं ।

१. महामुद्रा, २. महाबन्ध, ३. महाबेध, ४. खेचरी, ५. उड्डियान बन्ध, ६. जालन्धर बन्ध, ७. मूल बन्ध, ८. शक्ति चालन, ९. विपरीत करणी, १०. वज्रौली ।

वजौली मुद्रा के भेद

सहजौली,	अमरौली

टिप्पणी:—शक्ति चालन मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति के जगाने में विशेष लाभकारी है ।

बन्ध प्रयोग निर्णय:—

प्राणायाम का नाम	प्रयुक्त बन्धों का नाम
पूरक	मूलबन्ध
रेचक	मूलबन्ध+उड्डियान बन्ध
बाह्य कुम्भक	मूलबन्ध+उड्डियान बन्ध
आभ्यान्तर कुम्भक	मूलबन्ध+जालन्धर बन्ध

—:०:—

द्वितीय अध्याय

प्राणायाम के भाग

नाड़ी शोधन — प्राण संयमन

नाड़ी शोधन प्राणायाम के भेद

सहित कुम्भक, — केवली कुम्भक

योगदर्शन के अनुसार प्राणायाम के निम्न भेद हैं:—

प्राणायाम

बाह्य, — आभ्यान्तर, — स्तम्भवृत्ति, — बाह्य आभ्यान्तर विषया क्षेपी

टिप्पणी:—सहित कुम्भक, रेचक तथा पूरक सहित किया जाता है और केवली कुम्भक रेचक तथा पूरक रहित किया जाता है।

सावधानी:—प्राणायाम करते समय जिस स्वर से पूरक किया जाये उससे रेचन नहीं करना चाहिये। मुख से भी रेचन नहीं करना चाहिये तथा आभ्यान्तर कुम्भक के पश्चात् भी जोर से रेचन नहीं करना चाहिये।

सहित कुम्भक प्राणायाम के भेद

१—अनुलोम विलोम, २—सूर्य भेदन, ३--उज्जायी, ४--शीतली, ५--सीत्कारी, ६. भस्त्रिका, ७. मूर्छा, ८. भ्रामरी, ९. प्लावनी।

केवली कुम्भक प्राणायाम के भेद

खेचरी मुद्रा युक्त केवली कुम्भक, केवली कुम्भक

केवली कुम्भक प्राणायाम से पश्चिम मार्ग द्वारा समाधि सम्पन्न होता है। इस प्राणायाम द्वारा योगी विशेष शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है। यह प्राणायाम प्राण संयमन क्रिया के सम्पन्न होने के पश्चात किया जाता है। खेचरी मुद्रा सहित केवली कुम्भक विशेष लाभदायक है।

प्राणायाम का समय निर्णय

आसन पर स्थित होकर बन्ध त्रय सहित प्राणायाम

करते हुये १६ प्रणव मात्रा से पूरक, ६४ मात्रा से कुम्भक तथा ३२ मात्रा से रेचन करना चाहिये ।

अथवा

द्वादशं पूरकं कुर्यात्-कुम्भकं षोडशे भवेत् ।
रेचकं दशचोङ्कार: प्राणायाम: स उच्यते ।।

(योग चूणामण्योपनिषद्)

भावार्थ:—बारह मात्राओ से पूरक, १६ मात्राओं से कुम्भक एवम् दश ओङ्कार मात्राओं से रेचन करना ही प्राणायाम है ।

अधमे द्वादश मात्रा मध्यमे द्विगुणा मता ।
उत्तमे त्रिगुणा प्रोक्ता प्राणायामस्य निर्णय: ।।

(योग चूणामण्योपनिषद्)

भावार्थ:—अधम १२ मात्रा का, मध्यम २४ मात्रा का, तथा उत्तम ३६ मात्रा का प्राणायाम होता है ।

अधम प्राणायाम स्वेद जनक, मध्यम कम्पन दायक तथा उत्तम प्राणायाम पद्मासनस्थ साधक के शरीर को हल्का कर उत्थान कराता है ।

योगाभ्यासी की प्रारम्भिक अवस्था

लघुत्वमारोग्यलोलुपत्वं,
वर्णं प्रसादं स्वर सौष्ठवं च ।

गन्धः शुभो मूत्र पुरीषमल्पं,

योग प्रवृत्ति प्रथमां वदन्ति ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् २।१३)

भावार्थः—प्रथम अभ्यास काल में योगी का शरीर हल्का रोग रहित तथा कांति युक्त हो जाता है। स्वर में मधुरता, दिव्य गन्धों का अनुभव तथा पुरीषादि (मल मूत्रादि) की न्यूनता होने लगती है।

टिप्पणीः—नाड़ी शुद्धि के लिये सात्विक आहार प्राणायाम तथा ध्यान आवश्यक है। नाड़ियां शुद्ध होने पर अनहद नाद प्रारम्भ हो जाता है।

प्राण संयमन क्रिया के अंग

नाड़ी ज्ञान, वायु ज्ञान, शक्ति ज्ञान, प्राण संयमन

प्रमुख नाड़ियां

इड़ा (चन्द्र), पिंगला (सूर्य) सुषुम्णा (सरस्वती)

सुषुम्णा नाड़ी का अर्थ :--

दिवा न पूजयेल्लिङ्गम्, रात्रि चैव न पूजयेत् ।
सर्वदा पूजयेल्लिङ्गम् दिवा रात्रि निरोधतः ॥

[योग चूणामण्योपनिषद्]

भावार्थ :-- सूर्य स्वर चलने पर आत्मा का ध्यान नहीं करना चाहिये । चन्द्र स्वर चलने पर भी आत्मा का ध्यान नहीं करना चाहिये ।

सुषुम्णा नाड़ी [दोनों स्वर] चलने पर ही आत्मा का ध्यान करना चाहिये ।

सुषुम्णा नाड़ी :- यह नाड़ी नाभिकन्द से प्रारम्भ होकर पूर्व मार्ग [बङ्क नाल मार्ग] द्वारा हृदय स्थान से कण्ठ में होकर सिरके पिछले भाग में होती हुई भ्रमर गुफा से होकर पश्चिम मार्ग में स्थित [वीणा दण्ड या मेरू दण्ड] षट् चक्रों को पार करती हुई मूलाधार [उपस्थेन्द्रिय तथा गुदा के मध्य भाग] में समाप्त होती है ।

वायु ज्ञान

प्राण, अपान, व्यान, समान उदान

शक्ति के भाग

स्थूल शक्ति, सूक्ष्मा शक्ति

स्थूल शक्ति :—मूलाधार ९ अङ्गुल ऊपर अथवा नाभि से २ अङ्गुल नीचे पक्षी के अण्डे के तुल्य [समान] नाभि कन्द है। यहीं से समस्त नाड़ियाँ प्रारम्भ होती हैं। यहीं पर महाशक्ति [कुण्डीलनी] आठ अवगुण्ठन मारे, सुषुम्णा का मुख अवरुद्ध किये, स्वपुच्छ में गृहणकर सुषुप्ति दशा में स्थित है। इसी के जागने पर प्राण संयमन सिद्ध होता है, तथा सूक्ष्मा शक्ति भी स्वतः ही जाग्रत हो जाती है। इसे ही मध्य शक्ति भी कहते हैं।

सूक्ष्मा शक्ति :—यह सूक्ष्म कुण्डलिनी नामक महाशक्ति मूलाधार में साढ़े तीन अवगुन्ठन मारे सर्प के समान कुण्डलाकृत स्वरूप, मूलाधार स्थित सुषुम्णा को आवेष्ठित कर उसका मुख रोक, स्वपुच्छ मुख में दिये, बालाग्र के दश सहस्त्रांशवे भाग के तुल्य कोटि सूर्य के समान आभावाली [शक्ति] स्थित है। इसी शक्ति के जागरण से योगी वैभव सम्पन्न हो जाता है। यही अधः शक्ति के नाम से वर्णित है।

स्थूल शक्ति जगाने का साधन :--

भस्त्रिका प्राणायाम शनैः शनैः बन्धत्रय सहित करने से जिस समम कुम्भक में श्वास ५४० प्रणव मात्रा [५ मिनिट] तक स्थिर हो जाय, उस समय प्राण संयमन क्रिया करनी चाहिये ।

३२४ प्रणव मात्रा [३ मिनिट] तक कुम्भक स्थिर होने पर भी प्राण संयमन क्रिया की जा सकती है ।

टिप्पणी :- शक्ति जागरण काल में केवल दूध या गेहूँ अथवा चावल का मधुर तथा सीमित आहार करना चाहिये । योगी को एकान्त सेवी होना चाहिये ।

प्राण संयमन :--यह बङ्क नाल मार्ग द्वारा होता है । जब सूक्ष्मा शक्ति भ्रूमध्य से ऊपर आ जाती है, उस समय समस्त शारीरिक व्यापार समाप्त हो जाता है ।

—:प्राण संयमन क्रिया :--

मध्य शक्ति प्रबोधेन, अधः शक्ति निकुञ्चनात् ।
ऊर्ध्व शक्ति निपातेन, प्राप्यते परमं पदम् ॥

[सिद्धसिद्धान्त पद्धति,
उपदेश ४ श्लोक ४]

भावार्थ :--मध्य शक्ति जाग्रत होने पर अधः शक्ति का आकुञ्चन करते हुये ऊर्ध्व शक्ति को नीचे मिलाने से समाधि सम्पन्न होती है।

अपानमूर्ध्वमुत्थाय प्राणं कण्ठादधो नयेत्।
योगी जरा विनिर्मुक्तः षोडशो वयसा भवेत्॥

[योग तत्वोपनिषद् + शाण्डिल्योपनिषद्
श्लोक ३०]

भावार्थ :- अपान वायु को ऊपर उठाते हुये कण्ठ द्वारा प्राणों को लाने से योगी वृद्धावस्था से मुक्त होकर १६ वर्ष की अवस्था को प्राप्त होता है।

अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणाऽपान तथापरे।
प्राणापान गतीरुध्वा, प्राणायाम परायणाः॥

[गीता ४। २६]

भावार्थ :--अपान से प्राणों में तथा प्राणों से अपान में आहुति देते हुये प्राण और अपान की गति को रोक कर प्राणायाम में तत्पर होते हैं।

--: आसन से समाधि पर्यन्त का लाभ :--

आसनेन रूजोहन्ति, प्राणायामेन पातकम्।
विकार मानसं योगी, प्रत्याहारेण मुञ्चति॥

धारणाभिर्मनोधैर्यं, ध्याति चैतन्यमद्य ुतम् ।
समाधौ मोक्षमाप्नोति, त्यक्तवा कर्म शुभाऽशुभम् ॥

[योग चूणामण्योपनिषद्]

भावार्थ :--आसन द्वारा शरीर गत आलस्य एवम् प्रमाद तथा प्राणायाम् द्वारा पापों से छूट टाता है। प्रत्याहार द्वारा मानसिक विकारों से छूट जाता है।

धारणा द्वारा मन को धैर्य प्राप्त होता है । ध्यान में दिव्य चैतन्य [प्रकाश] का साक्षात्कार होता है। समाधि में संकल्पादि रहित मुक्ति तुल्य आनन्द प्राप्त होता है।

-: प्राणायाम से समाधि पर्यन्त का काल :-

प्राणायाम द्विषटकेन, प्रत्याहार प्रकीर्तिता ।
प्रत्याहार द्विषटकेन, जायते धारणा शुभा ॥१॥
धारणा द्वादश प्रोक्तं, ध्यानं योग विशारदैः ।
ध्यानं द्वादशकेनैव, समाधीत्यभिधीयते ॥२॥

[योग चूणामण्योपनिषद्]

भावार्थ :—प्राणायाम से १२ गुणा प्रत्याहार होता है। प्रत्याहार से १२ गुणी धारणा होती है।

धारणा से १२ गुणा ध्यान तथा ध्यान से १२ गुणी समाधि होती है।

उत्तम प्राणायाम में कुम्भक काल १२५ विपल या ५० सेकिन्ड माना गया है।

प्राणायाम की विशेषता

दह्यन्ते ध्मायमानानां, धातूनां हि यथामला: ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते, दोषा: प्राणस्य निग्रहात् ॥

[मनुस्मृति ६/११]

भावार्थ :—जिस प्रकार अग्नि में दग्ध करने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार प्राणों के रोकने से इन्द्रियादि अन्त:करण दोष मुक्त हो जाते हैं।

५– प्रत्याहार

इन्द्रियों को अपने विषयों से रोक कर मन को परमात्मा में लगाना ही प्रत्याहार है।

टिप्पणी:– १- प्राणायाम द्वारा जब श्वास १० मिनिट पर्यन्त स्थिर हो जाता है, उस समय मन की गति के साथ साथ इन्द्रियों की गति भी स्थिर हो जाती है। इसी दशा का नाम प्रत्याहार है। बन्ध त्रय के समुचित प्रयोग सहित

अभ्यास करने से यह स्थिति तीन मास में सम्पन्न हो जाती है।

२- योगाभ्यास काल में आहार सूक्ष्मता की दृष्टि से ६ छटांक पर्याप्त माना गया है।

३- एक वर्ष में केवल दुग्धाहार सहित उचित रूप से प्राणायाम करते हुये ४८ मिनिट तक कुम्भक किया जा सकता है।

६– धारणा

सूक्ष्म तन्मात्राओं की धारणा   पञ्च महाभूतों की धारणा

तन्मात्राओं की धारणा ५ हैं

१-पार्थिवी धारणा, २-आम्भसी धारणा, ३-आग्नेयी धारणा, ४-वायवी धारणा, ५-आकाशी धारणा।

इसके अतिरिक्त ५ अन्य धारणायें भी हैं।

१-भूचरी मुद्रा, २-चाचरी मुद्रा, ३-अगोचरी मुद्रा, ४-शाम्भवी मुद्रा, ५-उन्मनी मुद्रा।

टिप्पणी :– षणमुखी मुद्रा (राजयोग) ध्यानयोग में अत्यन्त सहायक है।

तृतीय अध्याय

७- ध्यान

सगुण | निर्गुण

सगुण ध्यान के लक्ष्य :--

१- मूलाधार, २- स्वाधिष्ठान, ३- मणिपुर, ४- अनाहत ५- विशुद्धाख्य, ६- आज्ञा, ७- सहस्रार (मूर्द्धा)

निर्गुण ध्याब के लक्ष्य:--

१– नाभि, २– हृदय, ३– नासिकाग्र, ४– भ्रूमध्य ५– सहस्रार (मूर्द्धा)

सहस्रार का ध्यान समाधिदायक है।

८– समाधि

सविकल्प | निर्विकल्प

समाधि के योग दर्शन में निम्न भेद मिलते हैं।

समाधि

सम्प्रज्ञात — असम्प्रज्ञात

सम्प्रज्ञात समाधि के भेद :—

१- वितर्कानुगत, २- विचारानुगत, ३- आनन्दानुगत, ४- अस्मितानुगत।

समाधि के अन्य ४ भेद :—

१-सवितर्का, २-निर्वितर्का, ३-सविचारा, ४-निर्विचारा।

समाधि के भेद :—

१-सबीज, २-निर्बीज, ३-धर्ममेघ

निर्बीज समाधि सर्व-श्रेष्ठ है।

समाधि के मार्ग

पूर्वमार्ग — पश्चिममार्ग

[बङ्कनाल मार्ग] [मेरु दण्ड या वीणा दण्ड मार्ग]

टिप्पणी:— १- "धर्म मेघ" समाधि सम्पन्न होने पर ही जीवन मुक्त अवस्था की प्राप्ति होती है।

२- साधकों को क्रमशः पांच स्थितियां कैवल्य तक उत्पन्न होती हैं।

अ-श्रद्धा, आ-वीर्य, इ-स्मृति, ई-समाधि, उ-प्रज्ञा

मंत्र योग

हकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः ।
हंसः सोऽहम् मंत्रेण, जीवो जपति सर्वदा ॥१॥
षट् शतानि दिवा रात्रौ, सहस्राण्येक विंशति ।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा ॥२॥

[योग चूणा मण्योपनिषद्]

भावार्थः— श्वास वायु हकार ध्वनि करता हुआ बाहर आता है तथा सकार की ध्वनि करता हुआ भीतर जाता है। इस प्रकार हंसः सोऽहम् मंत्र का जप जीवात्मा सर्वदा करता रहता है ॥१॥

इस प्रकार श्वास प्रश्वास की २१६०० संख्या द्वारा प्रतिदिन (अहर्निशि) जप करता है।

कुछ अन्यान्य महत्वपूर्ण साधनः—

मूलबन्ध आसनः— दांया पैर गुदा के नीचे या सीवन के मध्य लगावें। बाँया पैर पेडू के पास रक्खें। हाथ द्रोणाकार ऐड़ी पर रखें।

(ज्ञानेश्वरी गीता, ६।१२–१५)

(धर्म निर्णय प्रथम भाग पृष्ठ २२५)

टिप्पणी:— १- कुछ ग्रन्थकारों ने दांया पैर गुदा स्थान में न मानकर बाँया पैर माना है।

२- प्राण संयमन काल में केवल दुग्धाहार ही करना चाहिये।

प्राण संयमन द्वारा समाधि क्रिया:—

सर्व प्रथम ३१४ प्रणव मात्रा (३ मिनिट) तक मूलबन्ध आसन पर बैठ कर बन्ध त्रय सहित कुम्भक स्थिर करने का अभ्यास करना चाहिये। यह स्थिर होने पर रात्रि के तीसरे प्रहर में शान्त तथा एकान्त स्थान में कोमल आसन पर स्थित होकर एक घटिका पर्यन्त प्राणायाम करे। तत्पश्चात मूलबन्ध लगाकर शनैः २ उड्डयाण बन्ध लगावे। श्वास को शनैः २ आकर्षण पूर्वक ब्रह्माण्ड में ले जाय। मूर्द्धा में ध्यान करे। उतारते समय धीरे २ उड्डियाण बन्ध खोले यही पूर्व मार्ग से समाधि प्रक्रिया है।

पश्चिम मार्ग से समाधि क्रिया:—

सर्व प्रथम साधक ३२४ प्रणव मात्रा (३ मिनिट) पर्यन्त कुम्भक स्थिर करने का अभ्यास करने के पश्चात् रात्रि के तृतीय प्रहर में एकान्त तथा शान्त स्थान में सुकोमल आसन

पर पद्मासनस्थ हो एक घटिका पर्यन्त प्राणायाम करने के उपरान्त मूलबन्ध लगाकर पूरक करे। घटवत पूर्ण होने पर मूर्द्धा में ध्यान करे। इच्छा होने पर साधक खेचरी मुद्रा अथवा जालन्धर बन्ध लगावे।

कुम्भक स्थिर होने पर शनैः २ चक्रों का भी ध्यान क्रमशः किया जा सकता है। चक्रों का ध्यान क्रमशः तीन तीन मास में सिद्ध होता है। इसी केवली कुम्भक द्वारा साधक भूमि से उठकर अधर में स्थित हो जाता है।

उपरोक्त साधनों में प्राणों की गति ४ प्रकार की होती है:——

१- कीड़ी की भाँति, २- दादुर की भांति, ३- सर्प की भांति, ४- हंस की भाँति

ध्यान योग [राज योग]

के (शास्त्रीय) दो मार्ग:–

१- प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रेमत्तोन वेद्धव्यम् शरवत्तन्मयो भवेत्॥
[मुण्डकोपनिषद्, द्वितीय खण्ड मंत्र ४]

भावार्थः-- ओ३म् (प्रणव) को धनुष के रूप में प्रयुक्त करते हुये, आत्मा को बाण के रूप में प्रयुक्त कर निरालस्य होकर बाण के तुल्य तन्मय होकर ब्रह्म रुपी लक्ष्य का अनुसंधान करे।

२- प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्त चेष्टः,
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत्।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं,
विद्वान्मनो धारयेता प्रमत्तः॥

[श्वेताश्वतरोपनिषद्, २।९]

भावार्थः-- प्राणों को भली भांति पीड़ित करते हुये, क्षीण हुये प्राणों को नासिका द्वारा बाहर निकाल कर, विद्वान (योगी) दुष्ट घोड़े की भाँति मन को निरालस्य होकर वश में करे।

योगाभ्यास का फलः--

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वं संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

[मुण्डकोपनिषद, २।२।८]

भावार्थः— हृदय की समस्त ग्रंथियाँ (सत रज तथा तम की अथवा आवरण, विक्षेप और मल की) एवम् शंकायें नष्ट हो जाती हैं। अशुभ कर्म क्षीण होकर समस्त जगत हस्तामलक वत् उद्भासित होने लगता है।

योग साधन का विधान

१–प्रथम दो वर्ष तक तप करना चाहिये ताकि कष्ट सह सके फिर मूलबन्ध आसन से प्राणायाम करना चाहिये। प्रथम अवस्था के लिये नर्वदा तटीय विन्ध्यारण्य ही उत्तम स्थान है।

२–दो घटिका पर्यन्त समाधि लगाने का अभ्यास होने उपरान्त ही ऊपर के प्रदेश में जाना चाहिये, इससे पूर्व नहीं। वन प्रदेशस्थ औषधियों से परिचित होकर उनका सेवन करना चाहिये।

३ दो वर्ष की समाधि लगाने की योग्यता होने पर हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में (मानसरोवर) चले जाना चाहिये।

४–लगभग ४० वर्ष के अभ्यास से २ वर्ष की समाधि सम्पन्न होती है।

योगोन्नति का वर्णन

१–जिस समय योगी २॥ घटिका [१ घण्टा] पर्यन्त समाधि लगा लेता है, उस समय उसका हृदय पवित्र हो जाता है। वह अन्य हृदयों की बातें जाननें में समर्थ हो जाता है।

२–२४ घण्टे की समाधि लगाने की योग्यता होने पर चमत्कार शक्ति बढ़ जाती है।

३–एक सप्ताह की समाधि लगाने पर ब्रह्माण्ड वेत्ता हो जाता है।

४– छः माह की समाधि लगाने वाला ब्रह्माण्डों का भ्रमण कर सकता है तथा परकाया प्रवेश भी कर सकता है।

५–एक वर्ष की समाधि लगाने वाला पशु पक्षियों की बोली भी बोल सकता है।

६–तीन वर्ष से छः वर्ष तक की समाधि लगाने वाला महासिद्धि सम्पन्न हो जाता है।

७–छः वर्ष से १२ वर्ष तक समाधि लगाने वाला पूर्ण योगी हो जाता है।

विभिन्न सम्मतियां

1. Pranayama is the control of the prana and the vital forces of the body. If you can control the prana, you can control all the forces of universe, both physical and mental.

[By Shri Swami Shivanand Saraswati, from "Om" yearly edition of January 1955 named "Yogank", title of essay "Hath-yoga" page no. 55]

भावार्थ: प्राणायाम द्वारा प्राण तथा समस्त शारीरिक शक्तियों का संयमन होता है। यदि आप प्राणों का संयमन क ने में समर्थ हैं तो आप ब्रह्माण्ड को समस्त आध्यात्मिक तथा भौतिक शक्तियों का संयमन कर सकते हैं।

[अनुवादक स्वामी आत्मानन्द तीर्थ]

[मासिक पत्र "ओम" के जनवरी १६५५ के विशेषाङ्क ("योगाङ्क") में श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती के हठ योग नामक लेख में पृष्ठ ५५ से उद्धृत]

2. To define god deny God. [By Spinoya]

[From "Yogank" of January 1955 of "Om" title of essay "Gyan Samadhi Yoga" page 74]

भावार्थ:—ईश्वर की व्याख्या करना उसकी सत्ता को अस्वीकार करना है।

[मासिक पत्र "ओम" के जनवरी १६५५ के विशेषाङ्क "योगाङ्क" के "ज्ञान समाधि योग" पृष्ठ ५५ से उद्धृत]

॥ इति ॥

॥ ओ३म् ॥

साधन पथ

[लेखक :— ...मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य,
श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ]

[सर्वाधिकार लेखकाधीन हैं]

१८ जनवरी १९६४ ई०
१८ जनवरी १९६५ ई०

॥ ओ३म् ॥

॥ सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

प्रथम अध्याय

साधना का मार्ग वस्तुतः इतना जटिल नहीं है, जितना उसे समझा जाता है। पथ प्रदर्शक के अभाव में "साधन पथ" कुछ दुरूह सा अवश्य हो जाता है परन्तु ईश्वर विश्वासी के लिये समस्त कठिनाइयाँ स्वतः ही हल हो जाती हैं। महर्षि पतञ्जली ने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि "स पूर्वेषामपि गुरूः कालेनानवच्छेदात ॥

[योग दर्शन, समाधिपाद, २६]

अर्थात्– कालादि की सीमा से रहित वह परमात्मा पूर्वका–लीन गुरूओं का भी गुरू है। अतः जिज्ञासु के सन्मुख पथ प्रदर्शन की कठिनाई नहीं आती।

अपने दर्शन की वैज्ञानिक पद्धति से विवेचना करते हुये महर्षि पतञ्जली ने साधना को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है। "साधननस्त्रयो स्कन्धः" अर्थात् साधना के तीन स्कन्ध हैं। इस सूक्ति का पूरक निम्न सूत्र है।

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः ॥
[योगदर्शन साधन पाद, १]

भावार्थः— तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही साधना के तीन स्कन्ध हैं। महर्षि पतञ्जलि की सम्मति से तप ही साधना का मूल श्रोत है। तप का परिणाम महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है।

कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥
[योग दर्शन, २ ४३]

अन्वयः— तपसः अशुद्धिक्षयात् कायेन्द्रिय सिद्धिः। अर्थात् तप द्वारा अशुद्धि क्षीण होने पर काया (शरीर) और इन्द्रियों की सिद्धियां उत्पन्न होती हैं। महर्षि व्यास ने अपने भाष्य में लिखा:– निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्धयावरण-मलं तदावरण मलापगमात्काय सिद्धिरणिमादयः तथेन्द्रिय-सिद्धिर्दूराच्छ्रवण दर्शनाद्येति ॥

भावार्थः— तप के अनुष्ठान द्वारा अशुद्धि से आच्छा-दित मल नष्ट होता है। तब मल नष्ट होने से अणिमादिक कायिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं तथा दूर श्रवण एवम् दूर दर्शनादि इन्द्रिय जन्य सिद्धियां उत्पन्न होती हैं।

इसी पर राजर्षि भोज ने भाष्य करते हुये लिखाः--

तपःसमभ्यस्यमानं चेतसः क्लेशादि लक्षणाशुद्धि क्षय द्वारेण कायेन्द्रियाणांसिद्धिमुत्कर्षमादधाति । अपभयः । चान्द्रायणादिना चित्त क्लेश क्षयस्तत् क्षयादिन्द्रियाणां सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट दर्शनादि सामर्थ्यमाविर्भवति । कायस्य यथेच्छमणुत्व महात्वादीनि ॥

भावार्थः— तप के अभ्यास से क्लेश रूप अशुद्धि क्षीण हो जाती है, फिर शरीर और इन्द्रियों में उत्तम शक्ति उत्पन्न होती है । अर्थात् चान्द्रायण आदि व्रत करने से चित्त के क्लेश दूर हो जाते हैं तब इन्द्रियों में सूक्ष्म गुण तथा उत्तम पदार्थों को देखने की सामर्थ्य उत्पन्न होती है और शरीर को अणुत्व और महत्व आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

उपरोक्त सूत्र तथा उसके भाष्यों के मनन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अणिमादि सिद्धियां तप के द्वारा ही उत्पन्न होती हैं । योग दर्शन का विभूति पाद तप द्वारा ही जाना जा सकता है । वस्तुतः विभूतियां तपस्या के परिणाम स्वरूप स्वतः ही सम्पन्न होती हैं । तपोमय जीवन के अभाव में आज का साधक विभूतिपाद को कल्पना मानता है । अणिमादि सिद्धियों को वास्तविकता से रहित मानता है ।

आधुनिक भारत के प्रमुख सुधारक तथा सांस्कृतिक विचारक ऋषिवर स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने यजुर्वेद के १७वें अध्याय का भाष्य करते हुये निम्न मंत्र के भाष्य में लिखाः–

मंत्रः - पृथिव्याऽअहमुदन्तरिक्षमारूहमन्तरिक्षाद्दिवमारूहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥य० १७।६७॥

संस्कृत भावार्थः यदा मनुष्य स्वात्मना सह परमात्मानं युंक्ते तदाऽणिमादयः सिद्धय प्रादुर्भवन्ति ततोऽव्याहतगत्याभीष्टानि स्थानानि गन्तुं शक्नोति नान्यथा ॥

भावार्थः–जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है, तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती हैं, उसके पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं ।

यही नहीं इसी यजुर्वेद के १७वें अध्याय के ७१वें मंत्र के भाष्यान्तर्गत महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने लिखाः–

यो योगी तप आदि साधनैर्योग बलं प्राप्यासंख्य प्राणि शरीराणि प्रविश्यानेक नेत्रादिभिरङ्ग दर्शनादि कार्याणि कर्त्तु

शक्नोति । अनेकेषां पदार्थानां धनानां च स्वामी भवति सो अस्माभिरवश्यं परिचरणीयः ।

भावार्थ जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान आदि योग के साधनों से योग [धारणा, ध्यान, समाधि, संयम] के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्रादि अङ्गों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है। अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है ।

यह भाष्य स्वामी जी महाराज द्वारा परकाया प्रवेश की मान्यता का प्रतिपादक है। अर्थात् तप ही समस्त दिव्य साधना का आधार है ।

योग दर्शनान्तर्गत विभूतिपाद के व्यास भाष्य में स्पष्ट शब्द हैं। "यया परशरीराण्याविशन्ति योगिनः" ।

[यो० द०, ३।४३]

जिसके द्वारा योगीजन पर शरीर में प्रविष्ट होते हैं।

राजर्षि भोज द्वारा लिखी गई भोज वृत्ति में स्पष्ट है कि "अथ परशरीर प्रविष्टो योगी स्वशरीरवत् तेन व्यवहरति ॥

[यो० द० वि० पा० भो० वृ० ३८]

अन्य शरीर में प्रविष्ट होकर योगी उस शरीर से अपने शरीरवत् व्यवहार करता है।

योग दर्शन के प्रामाणिक भाष्य तथा यजुर्वेद का महर्षि दयानन्द जी सरस्वती कृत भाष्य परकाया प्रवेश तथा अन्य सिद्धियों की भली भांति पुष्टि करता है।

यद्यपि तप की महत्ता का स्पष्टीकरण तो हो गया परन्तु तप है क्या ?

तपः–वह श्रम जो हमें पवित्रता की ओर ले जाता है, तप है। प्रकार भेद से तप अनेक प्रकार का हो सकता है परन्तु तप की पराकाष्ठा के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से महर्षि मनु का मत अत्यधिक प्रामाणिक है।

प्राणायामं परमं तपः। मनुः २।८३॥

अतः प्राणायाम ही परम तप है। यही नहीं महर्षि मनु ने एक स्थान पर कहाः–

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्॥

[मनु० ६।७२]

प्राणायाम से शारीरिक दोषों (रोगों) से धारणा द्वारा मानसिक पापों से (विक्षेप) तथा प्रत्याहार द्वारा चित्त पर पड़े हुये संस्कारों से मुक्त होकर ध्यानावस्था में स्थित होकर परमात्मा के पवित्र गुणों को धारण करते हैं।

यही नहीं यह प्राणायाम रूपी तप हमें ठीक इस प्रकार पवित्र बना देता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथामलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

[मनु. ६।७]

अग्नि में तप्त करने से जिस प्रकार धातुओं का मल भस्म हो जाता है उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह (प्राणायाम) से इन्द्रियादि (अन्तःकरण सहित) के समस्त दोष दग्ध हो जाते हैं।

अतः प्राणायाम ही तप का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

योग दर्शनान्तर्गत योग के क्रियात्मक स्वरूप का पालन करने पर तीन परिणाम निश्चित रूप से प्राप्त होते हैं।

योगाङ्गानुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः ॥

यो० द०, २।२८ ॥

योगाङ्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि क्षीण होकर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है तथा विवेकमय प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है।

अर्थात् साधन पथ के तीन लक्ष्य स्पष्टतः सामने आते हैं।

अ-अशुद्धि क्षीण होना। आ-ज्ञान दीप्ति।
इ-विवेक ख्याति।

अशुद्धि तप द्वारा क्षीण होती है।

यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥

[यो० द०, २।२६]

यम नियम आसन प्राणायाम प्रेत्याहार ध्यान धारणा तथा समाधि ये योग के आठ अंग हैं। योग के आठ अंग तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान में किस स्थान पर स्थित हैं इसे समझना अत्यावश्यक है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार, तप की भूमिका में आते हैं। यम के पांच अंग हैं:—

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहायमाः ॥

[यो० द०, २।३०]

अहिंसा द्वारा मन की पवित्रता तथा सत्य द्वारा वाणी की पवित्रता सम्पन्न की जाती है। अस्तेय द्वारा लोभ वृत्ति का परिहार करते हुये ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति सम्पादन का प्रयास किया जाता है तथा अपरिग्रह द्वारा संयमी जीवन के आदर्श द्वारा जीवन की महत्ता को जानने का प्रयास किया जाता है।

शौच सन्तोष तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः
[यो० द०, २।३२]

शौच सन्तोष तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

शौच के अनुष्ठान से अन्तःकरण की पवित्रता, मन की प्रसन्नता तथा एकाग्रता, इन्द्रियों पर स्वामित्व तथा आत्म-दर्शन की योग्यता उत्पन्न होती है। संतोष द्वारा अभूतपूर्व सुख प्राप्त होता है। तप द्वारा समस्त अशुद्धियाँ क्षीण होकर अणिमादि सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं। स्वाध्याय से अपने लक्ष्य को भली भांति जानकर ईश्वर प्रणिधान से समाधि सम्पन्न होती है।

आसनों के अनुष्ठान स्वरूप द्वन्द्व सहन की क्षमता उत्पन्न होती है।

प्राणायाम द्वारा बुद्धि का अवरोधक आवरण (अज्ञान) क्षीण होने पर प्रज्ञा आलोकित हो उठती है। प्रत्याहार की दशा में अन्तःकरण तथा इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। वस्तुतः महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रस्तुत साधन पाद प्रत्याहार के इस सूत्र "ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्" (यो० द०, २।५५) पर समाप्त हो जाता है। अतः साधक का प्रमुख लक्ष्य इन्द्रिय एवम् अन्तःकरण पर अधिकार सम्पादित करना है। इस दृष्टि से साधना का यम से लेकर प्रत्याहार तक का सारा क्षेत्र तप के अन्तर्गत आ जाता है। प्रज्ञालोक भी तप से ही प्राप्त होता है। सिद्धियां भी तप से ही सम्पादित होती हैं। यही नहीं तप द्वारा अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, तथा मनोमय कोष पर भी अधिकार प्राप्त कर लेता है। यहीं से स्थूल साधना सूक्ष्म साधना में परिवर्तित हो जाती है। साधक को साधना का मधुर फल मिलता है। उसका चित्त एक देश में स्थिर होने में समर्थ हो जाता है। यही धारणा है।

देशबन्ध चित्तस्य धारणा ।। यो० द०, ३।१ ।।

धारणा की परिपक्वावस्था ध्यान है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।यो० द०, ३।२।।

उपलक्ष्य में चित्त की अधिक काल तक स्थिर दशा का नाम ध्यान है जिसमें पूर्व धारणा की गई हो।

धारणा तथा ध्यान स्वाध्याय के अन्तर्गत आते हैं। इन्द्रियों तथा अन्तःकरण पर तप के द्वारा अधिकार करने के उपरान्त सूक्ष्म जगत पर स्वाध्याय के द्वारा अधिकार किया जाता है। तपश्चर्यामय जीवन का फल विभूतियां हैं। अतः अद्भुत वैज्ञानिक महर्षि पतञ्जलि ने धारणा तथा ध्यान को विभूति पाद में रखा है। तप के द्वारा सम्पादित होने वाली सर्वप्रथम विभूति धारणा है।

स्वाध्याय द्वारा हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ॥ [यो० द०, २।४४] स्वाध्याय से हम ध्यानावस्था में आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। महर्षि व्यास ने योग दर्शन के भाष्य में लिखा है:—

स्वाध्यायाद्योगमासीत, योगात् स्वाध्यायमामनेत।
स्वाध्याय योग सम्पत्या. परमात्मा प्रकाशते ॥

॥यो० द०, व्या० भा०, १।२८॥

स्वाध्याय युक्त हो योगाभ्यास करे तथा योगाभ्यास करते हुये स्वाध्याय में निरत रहे। इसी स्वाध्याय तथा योग बल से परमात्मा का ज्ञान होता है।

इस स्वाध्याय कालीन उपासना द्वारा साधक विज्ञानमय कोष (बुद्धि) पर अधिकार कर लेता है। उसे ध्यानावस्था में आनन्द आने लगता है। प्रकाश की प्राप्ति हो जाती है। ध्यानमय अवस्था आलोकित हो उठती है। इस समय तक साधक के मल, विक्षेप तथा आवरण दोषों की समाप्ति हो जाती है। यह तीनों दोष क्रमशः स्थूल शरीर, चित्त तथा बुद्धि में स्थित रहते है। मल दोष से रहित होने पर शरीर निरोग हो जाता है। विक्षेप दोष के मिटने पर चित्त स्थिरता को प्राप्त कर लेता है तथा आवरण (अज्ञान) दोष की समाप्ति कर बुद्धि निर्मल हो जाती है।

इन तीन दोषों का परिहार साधक को सर्वप्रथम अत्यावश्यक है। इन दोषों के परिहार के साथ ही साधक का शरीर मन तथा बुद्धि दिव्य आभा से युक्त हो जाते हैं। उनमें दिव्यता आ जाती है। विभूतियों की आकाङ्क्षा से रहित होते हुये भी विभूति सम्पन्न हो जाता है।

इस क्रिया योग का अन्तिम स्कन्ध ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर प्रणिधान से ही समाधि सिद्ध होती है।

समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् [यो० द० २।४५]

समाधि क्या है ? इसे योग दर्शन के द्वारा भली भांति जाना जा सकता है ।

तदेवार्थं मात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः ॥
[यो० द० ३।३]

जब ध्यानावस्थित दशा में अपना स्वरूप शून्यवत् रह जाता है तथा केवल लक्ष्य मात्र भासित होता है उस दशा का नाम समाधि है ।

वस्तुतः तप द्वारा कर्मेन्द्रियाँ एवम् ज्ञानेन्द्रियां मन सहित अत्यन्त पवित्र होकर शान्त हो जाती हैं उस समय मानसिक स्थिरता उत्पन्न होती है । आनन्दमय कोष पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है । हृदय में आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगती है । आत्मा अपने प्रकाशमय स्वरूप का साक्षात्कार करता है । समस्त विश्व की स्थिति शून्यवत् भासित होती है उस दशा का नाम समाधि है । इसी प्रकाशमय दशा में परमपिता परमात्मा का साक्षात्कार होता है । प्रज्ञा (बुद्धि) ऋतम्भरा हो जाती है । किसी भी विषय पर क्षणमात्र में निर्णय करने की महती क्षमता उत्पन्न हो जाती है ।

इसी समाधि जन्य क्षमता द्वारा योगी जन मुक्ति में आनन्द का उपभोग करते हैं। लोक और परलोक की अनुपमता का रसास्वादन इसी से प्राप्त होता है। वास्तव में समाधि का निरन्तर अभ्यास करने से दिव्यीकरण (Super humanity) हो जाता है। नाना प्रकार की दिव्य शक्तियां शरीर तथा मन में उत्पन्न हो जाती हैं। अनेकों प्रकार के लौकिक चमत्कार प्रदर्शन की योग्यता उत्पन्न हो जाती है।

यद्यपि योगदर्शन की रीति से धारणा ध्यान तथा समाधि स्वयं विभूतियां हैं परन्तु समाधि के उपरांत जो अन्यान्य विभूतियाँ उत्पन्न होती हैं उनके लिये योग दर्शन के निर्माता पतञ्जलि ने एक सुनियोजित वैज्ञानिक प्रकार रखा है।

त्रयमेकत्र संयमः ॥यो० द०, ३।४॥

धारणा, ध्यान और समाधि का एकत्रित होना संयम है।

इस सूत्र को समझ लेने पर ही अन्यान्य विभूतियों का आधार जाना जा सकता है।

प्राण शक्ति (मन सहित) को एक देश में बांधने की क्षमता का सम्पादन करते हुये उसे उसी देश में स्थिर रखते

हुये अपने अर्थ (लक्ष्य) के अतिरिक्त सभी तरफ से शून्यवत् स्थिति प्राप्त कर लेना संयम है।

इसी शक्ति सम्पन्न अवस्था का विभिन्न लक्ष्यों में विनियोग किया जाता है। इस प्रकाश सम्पन्न दशा, तथा विनियोग का मूल आधार प्राण शक्ति है। अतः योगी को अपनी प्राण शक्ति को प्रबल बनाने का निरंतर प्रयास करना चाहिये। इन्द्रियादि के संयम, प्राणायाम के अभ्यास तथा प्राण संयमन क्रिया के नित्य प्रति करने से प्राण शक्ति अत्यन्त बलवान एवम् वशवर्त्तिनी हो जाती है। प्राण शक्ति के बलवान और वशवर्त्तिनी हुये बिना विभूति पाद में प्रवेश सम्भव नहीं है। विभूति पाद के अनुसार योगी की अत्यन्त निष्णात् अवस्था, तारक ज्ञान अथवा विवेकज ज्ञानमय अवस्था है। "याथातथ्या" मय स्वरूप को जान लेना ही विवेकज ज्ञान है। ज्ञान एवम् शरीर की अव्याहत गति समन्वित दशा उसे आकाङ्क्षा रहित बना देती है।

साधनावस्था में कतिपय विचारक विभूतियों का प्रादुर्भाव ही नहीं मानते हैं। वास्तव में महर्षि पतञ्जलि भी साधन काल में विभूतियों का प्रादुर्भाव नहीं मानते हैं परन्तु आधुनिक

विचारकों और महर्षि पतञ्जलि में एक मौलिक अन्तर है। आधुनिक विचारक विभूतियों को साधक जीवन में कहीं भी मानने को तैयार नहीं हैं परन्तु इसके स्थान में महर्षि पतञ्जलि स्पष्ट रूप से साधना का फल विभूतियों को मानते हैं। आधुनिक विचारकों की विचार भित्ति का आधार वेदान्त का आधुनिक रूप है। यदि निष्पक्ष रूप से वेदान्त के अध्ययनोपरान्त निर्णय किया जाय तो वेदान्त दर्शन का तीसरा पाद हमें उसी साधना का पवित्र सन्देश दे रहा है जिसका सन्देश हमें योग दर्शन का साधन पाद देता है।

योगाभ्यासी के जीवन में विभूतियों का प्रवेश अनिवार्य है। जिस प्रकार भोजन करने के उपरान्त क्षुधा समाप्त होकर तृप्ति उत्पन्न होती है ठीक इसी प्रकार साधना के परिणाम स्वरूप अणिमादि विभूतियां उत्पन्न होती हैं।

योग दर्शन की आर्ष वैज्ञानिक परम्परा अद्भुत है। समस्त अन्य दर्शनों की अपेक्षा योग दर्शन एक क्रियात्मक दर्शन है। योग दर्शन सम्पूर्णतः वैज्ञानिक शैली पर आधारित है। तपोमय जीवन के अभाव में योग दर्शन को नहीं समझा जा सकता है। आधुनिक विचारक अधिकांश रूप में तपोमय

जीवन को महत्व नहीं देते अतः विभूति पाद के लाभ से उन्हें वञ्चित रहना पड़ता है ।

साधनपाद की समाप्ति धारणा की स्थिति प्राप्त होने पर होती है। ठीक इसी भाँति विभूतिमय दैवी जीवन की पराकाष्ठा विवेक में सम्पन्न होती है। समस्त वासनाओं की निवृत्ति के उपरान्त कैवल्य प्राप्त होता है ।

[इति प्रथम अध्यायः]

॥ ओ३म् ॥

॥ सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

द्वितीय अध्यायः

प्रश्नः——मुक्ति किसको कहते हैं ?

उत्तर——"मुञ्चन्ति पृथक्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः" जिसमें दुःखों से छूटकर सर्वथा पृथक् हो जाना हो उस दशा का नाम मुक्ति है।

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥

[न्या० द०, १। १। २२]

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद है, वही मुक्ति है। दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्त रोत्तरापाये तदन्तरापायादपवर्गः। [न्या० द०, १। १। २॥]

मिथ्या ज्ञान (अविद्या) काम, क्रोध, लोभ मोहादि दोष, दुष्ट व्यसनों में प्रवृत्ति, जन्म और क्लेशादि दुःख उत्तरोत्तर क्रमशः निवृत्त होनें से मोक्ष होता है।

प्रश्नः—मुक्ति और बन्ध किन किन बातों से प्राप्त होता है ?

उत्तरः—परमेश्वर की आज्ञा पालन करने, अविद्या, कुसङ्ग और कुसंस्कारों से पृथक रहने, सत्यभाषण, परोपकार विद्या, पक्षपात रहित न्याय तथा धर्म की वृद्धि करने, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् विधिवत् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने पढ़ाने और धर्म पूर्वक पुरुषार्थ कर ज्ञान वृद्धि करने, पक्षपात रहित न्याय पूर्वक बर्त्तने से मुक्ति प्राप्त होती है।

परमेश्वर की मर्यादा भङ्ग करने, मिथ्याचार एवम् अविद्या युक्त व्यवहार करने तथा दुष्ट कर्म आदि करने से बन्ध होता है।

मुक्ति के अभिलाषी व्यक्ति को मिथ्याभाषणादि दुःखदायक पाप कर्मों को त्याग कर सुख स्वरूप, सत्य भाषणादि धर्माचरण करना चाहिये।

शरीरस्थ पञ्च कोषों का भली भांति मनन करना चाहिये।

अ-अन्नमय कोषः—त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का

समुदाय अन्नमय कोष है । अर्थात् स्थूल शरीर का नाम अन्नमय कोष है ।

आ-प्राणमय कोष:-इसमें प्राणवायु के मुख्य भेद पांच प्राण तथा पांच उपप्राण हैं:—

१ प्राण:—जो श्वास क्रिया के साथ शरीर में जाता है इसका मूख्य निवास हृदय में हैं ।

२ अपान:— जो प्रश्वास क्रिया के साथ शरीर से बाहर निकलता है तथा नाभि से नीचे के भाग में रहता है और मल आदि विसर्जन क्रिया का आधार है ।

३ व्यान:—समस्त नाड़ियों में रहने वाली यह वायु व्यान के नाम से प्रसिद्ध है । यह मज्जा आदि का शोषण करता हुआ बल बढ़ाता है ।

४-समान:-नाभि मण्डल में समान वायु का निवास है । जठराग्नि को दीप्त करता है तथा पाचन कराता है ।

५-उदान:—कण्ठ से ऊपर उदान वायु है । अन्तकाल में जीवात्मा इसी वायु के साथ गमन करता है । भोजन आदि कण्ठ से नीचे इसी के द्वारा जाता है ।

पांच उपप्राण

१-नागः—समस्त शरीर में व्यापक होकर रहता है तथा शरीर को फुलाता है।

२-कूर्मः—शरीर का कांपना तथा पलकों का संचालन इसी से होता है।

३-कृकलः—इसके द्वारा डकार आना तथा भूख लगना आदि कार्य सम्पन्न होते हैं।

४-देवदत्त :—यह वायु जंभाई आदि का प्रमुख कारण है।

५-धनञ्जयः—इस वायु द्वारा अव्यक्त शब्द उत्पन्न होता है।

इ-मनोमय कोषः—इसमें निम्नलिखित तत्व हैं—

१-मन, २-अहंकार, ३-वाक्, ४-पाद, ५-पाणि, ६-पायु, ७--उपस्थ।

उ--विज्ञानमय कोषः—इसमें निम्नलिखित तत्व हैं—

१--बुद्धि, २--चित्त, ३--श्रोत्र, ४--त्वचा, ५--नासिका, ६--नेत्र, ७--जिह्वा।

ऊ--आनन्दमय कोष—जिनसे जीवात्मा प्रीति, प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द आदि अनुभव करता है। जिसका आधार कारण रूप प्रकृति है।

चार अवस्थायें—

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय (समाधि)

शरीर त्रय—

अ—प्रथम स्थूल शरीर जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

आ—दूसरा सूक्ष्म शरीर जो सत्तरह तत्वों का समुदाय है।

पांच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान।

पांच सूक्ष्मभूत—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।

पांच ज्ञानेन्द्रियां—त्वचा, श्रोत्र, नेत्र, नासिका, जिह्वा तथा मन और बुद्धि ये सत्तरह तत्व हैं। यह जन्म मरण में भी साथ रहता है। यह सूक्ष्म शरीर दो प्रकार का है—

१--प्राकृतिक, अर्थात पञ्च महाभूतों के सूक्ष्म अंश से बना हुआ है।

२--स्वाभाविक—यह जीवात्मा का स्वाभाविक गुण रूप है। यह स्वाभाविक शरीर मुक्तावस्था में भी रहता है तथा इसी से जीव मुक्ति में आनन्द को भोगता है। यह स्वाभाविक गुण रूपी शरीर २४ प्रकार की शक्तियों से युक्त है। बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन, गन्ध, ग्रहण तथा ज्ञान, यह २४ सामर्थ्य हैं परन्तु मुख्य शक्ति चेतनता ही है।

३--कारण शरीर—यह प्रकृति रूप होने से सब जीवों के लिये एक सा है। इसी के कारण सुषुप्ति अवस्था अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है।

इन सब कोषों तथा शरीरों के माध्यम से जीवात्मा पाप और पुण्य का कर्त्ता भोक्ता है।

जब इन्द्रियां अपने विषयों में मन इन्द्रियों में और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे व बुरे कर्मों में लगाता है। यही जीवात्मा सबका

प्रेरक सबका धर्त्ता साक्षी, कर्त्ता और भोक्ता कहाता है। जब कर्म करते समय यह बहिर्मुख होता है, उसी समय भीतर से आनन्द उत्साह निर्भयता और बुरे कर्मों मे भय शङ्का और लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। इसके अनुकूल आचरण से मोक्ष तथा विपरीत वर्त्तने से बन्ध होता है।

साधन चतुष्टय—

१-विवेक:—श्रोत्रिय एवम् ब्रह्मनिष्ठ योगाभ्यास परायण आचार्य के सत्योपदेश द्वारा यथार्थ स्वरुप को जानने की क्षमता का नाम विवेक है अथवा जिससे ज्यों का त्यों जाना जाय अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार का जानना विवेक है।

२-वैराग्य—दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ॥ (यो० द० १। १५)

देखे और सुने हुये समस्त विषयों में आकाङ्क्षा न रखते हुये चित्तादि इन्द्रियों को वंशवर्ती रखना वैराग्य है।

३—षट सम्पत्ति—इसके निम्नलिखित छः अंग हैं—

अ—शमः—आत्मा और अन्तः करण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में सदा प्रवृत्त रखना ही शम है।

आ—दमः—श्रोत्रादि इन्द्रियों को व्यभिचारादि पाप कर्मों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना ही दम है।

इ—श्रद्धाः—वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण विद्वान आप्त पुरुष आचार्य आदि सत्योपदेष्टा महात्माओं के वचनों पर विश्वास करना तथा तदानुकूल आचरण करना श्रद्धा है।

ई—समाधानः—साधक के अन्तःकरण में उत्पन्न हुई समस्त शंकाओं का शास्त्र के अनुशीलन एवम् आचार्य द्वारा संतुष्टि करने से उत्पन्न चित्त की समाहित अवस्था का नाम समाधान है।

उ—उपरामः—दुष्ट कर्मों तथा दुष्ट स्वभाव के प्राणियों को सर्वदा उपेक्षा करना तथा विषयों से उपराम रहना ही उपराम या उपरीत है।

ऊ—तितिक्षाः—निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, सुख, दुख आदि की

उपेक्षा करते हुये हर्ष, शोक से रहित होकर मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ रहना ही तितिक्षा है ।

४- मुमुक्षुत्वः — जिस प्रकार क्षुधातुर को अन्न ही प्रीतिकर लगता है ठीक इसी भांति साधक को मोक्ष के साधनों के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की अन्य रूचि का न होना और मोक्ष के साधनों का श्रद्धा सहित निरंतर सेवन करना ही मुमुक्षुत्व है ।

अधिकारी आदि अनुबन्ध निरूपणः–

अ-अधिकारीः– उपरोक्त साधन चतुष्टय से सम्पन्न व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी होता है ।

आ-सम्बन्धः– ब्रह्म की प्राप्ति रूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादिशास्त्र प्रतिपादक को यथावत् समझकर कार्यान्वित करना सम्बंध है ।

इ-विषयः– वेदादि समस्त ग्रंथों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है । उस विषय की प्राप्ति वाले पुरुष की संज्ञा विषयी है ।

ई-प्रयोजनः– समस्त दुःखों की निवृत्ति और परमानंद रूपी मोक्ष सुख का प्राप्त करना ही प्रयोजन है ।

अथ श्रवण चतुष्टयः––

१- श्रवणः– ब्रह्मनिष्ठ आप्त विद्वान आदि आचार्यों से

ब्रह्मविद्या विषयक उपदेशों को श्रद्धा सहित सुनना ही श्रवण है ।

२-मनन:——ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय आप्त आचार्य द्वारा ब्रह्म विषयक सुने हुये उपदेश का एकांत देश में स्थित हो चिन्तन करना तथा तद्विषयक शंकाओं का आचार्य द्वारा समाधान कराना एवम् श्रवण काल में भी गम्भीरता पूर्वक विनम्रता सहित विषय को स्पष्ट रूप से समझने के लिये शंका समाधान आदि करना ।

३-निदिध्यासन:—— जब सुनने और मनन करने से निश्चय हो जाय तब ध्यानावस्थित होकर उस विषय का चिंतन करना तथा उसकी पुन: २ दृढ़ धारणा करनी ।

४-साक्षात्कार:—— जैसा जो पदार्थ व विषय हो उसको वैसा जानना तथा समाधि में उसका दर्शन करना साक्षात्कार है । यही तत्व दर्शन है ।

व्यवहार

सदा तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या द्वेष काम अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्व अर्थात् शान्त प्रकृति पवित्रता,

विद्या, विचार आदि गुणों को धारण करे। सुखी जनों में मित्रता, दुःखी जनों पर दया, पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होना, तथा दुरात्माओं की सर्वथा उपेक्षा करनी चाहिये।

साधना

नित्य प्रति न्यून से न्यून दो घण्टा पर्यन्त मोक्षाभिलाषी ध्यान अवश्य करे जिससे मन आदि सूक्ष्म पदार्थ साक्षात् हों। अविद्या को ज्ञान द्वारा निवृत्त करना। पृथक् वर्तमान बुद्धि आदि अन्तकरण को आत्मा से भिन्न न समझना अस्मिता, सुख में प्रीति राग, दुःख से घृणा द्वेष और सर्वथा शरीरस्थ रहने की भावना अभिनिवेश कहाता है। इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास और ब्रह्म विद्या के सतत अभ्यास द्वारा छुड़ाकर ब्रह्म को प्राप्त करे।

यह साधन पथ योग्य गुरु द्वारा ही जाना जा सकता है।

योग्य गुरु की क्षमता, तथा उसके पास जिज्ञासु का जाने का प्रकार:--

तद्विज्ञानार्थं स गुरु मेवाभिगच्छेत्।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्टम्॥

[मु० उ० ख० २।१२]

सत्य को जानने के लिये साधक हाथ जोड़ कर विनम्र भाव से भेंट लेकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जानने हारे योगी गुरु के पास जावे ।

श्रोत्रिय एवम् ब्रह्मनिष्ठ एवम् ब्रह्मविद् गुरु का कर्तव्यः–
तस्मै सविद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमन्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तान्तत्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥
॥ मु० उ० ख० २, मत्र १३ ॥

जब जिज्ञासु ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरु के पास जाय, तब उस शान्त चित्त जिज्ञासु को यथार्थ ब्रह्मविद्या, परमात्मा के गुण कर्म और स्वभाव का उपदेश करे और योग विद्या के सेवन द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार करावे ।

॥ सामान्य प्राणायाम विधिः ॥

शान्त समय में, एकान्त स्थान में पवित्र एवम् कोमल आसन पर स्थित हो जिधर की ओर से वायु बह रही हो उधर मुख करके नाभि के नीचे मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु बल पूर्वक बाहर निकाल कर यथाशक्ति बाहर रोके । तत्पश्चात धीरे धीरे भीतर भरे । यथाशक्ति अन्दर रोक कर शनैः २ बाहर निकाल दे । यह एक प्राणायाम हुआ । इसी प्रकार शनैः शनैः क्रमशः २१ पर्यन्त बढ़ाता जाय ।

[इति द्वितीय अध्याय]

॥ ओ३म् ॥

योगाभ्यास का शास्त्रीय प्रकार

[लेखक :— श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य,
श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ]

[सर्वाधिकार लेखकाधीन हैं]

[लेखन तिथि, १८ जनवरी १९६६ ई०]

॥ ओ३म् ॥

ओ३म् युक्तेन मनसा वयंदे वस्य सवितुः सवे ।

स्वर्ग्याय शक्त्या ॥य० ११।२॥

हम सब जिज्ञासु जन योगाभ्यास के द्वारा उस सर्व प्रकाशक परमात्मा की मोक्ष सुख के लिये उपासना करते हैं।

योगाभ्यास का शास्त्रीय प्रकार

१-यम नियमादि का शनैः २ उत्साह पूर्वक अभ्यास करता जाय तथा यम नियमादि की सिद्धि का यथावत परीक्षण भी कर लिया करे, ताकि अपने अभ्यास की स्थिति का ज्ञान होता रहे।

यथा:– अ–अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथं ता संबोधः ॥

[यो० द०, २।२६]

अपरिग्रह की स्थिरता से जन्म के कारण रूप पूर्व जन्म के कर्मों तथा पूर्व जन्मादि का ज्ञान हो जाता है।

आ–शौचः–सत्वशुद्धि सौमनस्यैकाग्रेन्द्रिय ।

जयात्मदर्शन योग्यत्वानि च ॥

[यो० द०, २।४१]

अन्तःकरण की पवित्रता, मन की सरलता, इन्द्रियों पर अधिकार एवम् आत्म दर्शन की योग्यता शौच के पालन से होती है।

इ-तपः-कायेन्द्रियसिद्धिर शुद्धि क्षयात्तपसः ॥

[यो० द०, २।४३]

तप के द्वारा शारीरिक एवम् इन्द्रियादि की अशुद्धि क्षीण होने पर काया और इन्द्रियों की सिद्धियां सम्पन्न होती हैं।

उ-तप के द्वारा शारीरिक अणिमादि सिद्धियाँ तथा दूरदर्शन एवम् दूरश्रवण आदि ऐन्द्रिक सिद्धियाँ सम्पन्न होती हैं।

२-साधना करने के लिये प्राणायाम करने से पूर्व पद्मासन, सिद्धासन, अथवा वीरासन से दो घटिका (४८ मिनिट) पर्यन्त स्थिर बैठने का अभ्यास कर लेना चाहिये।

३-श्वास प्रश्वास की गति का पूर्णतः अभाव हो जाने पर ही प्राणायाम की सफलता समझनी चाहिये। इसके लिये बन्धत्रय सहित विधिवत प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

भस्त्रिका प्राणायाम का विशेष सावधानी सहित अभ्यास करने से तीन मास में ७॥ पल (३ मिनिट) का आभ्यान्तर कुम्भक स्थिर हो जाता है।

४—बन्ध प्रयोग

प्राणायाम का नाम,	प्रयुक्त बन्धों का नाम
पूरक]	मूलबन्ध
रेचक]	मूलबन्ध+उड्डियान बन्ध
बाह्य कुम्भक]	मूलबन्ध+उड्डियान बन्ध
आभ्यान्तर कुम्भक]	मूलबन्ध+जालन्धर बन्ध

५— आभ्यान्तर कुम्भक काल में नेत्र बन्द होवे पर प्रकाश उत्पन्न हो तो प्राणायाम की सफलता का आरम्भ समझना चाहिये।

६— प्राणायाम के अभ्यास में शीघ्र सफलता पाने के लिये, नेति, धौति, बस्ति, तथा न्यौलि क्रिया का प्रयोग कर लेना चाहिये।

७— प्राणायाम सिद्ध होने पर ही प्रत्याहार सिद्ध होता है।

अः— ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ यो० द०, २।५५॥

प्रत्याहार के सिद्ध होने पर चित्तादिक समस्त इन्द्रियगण योगी के अधीन हो जाते हैं।

८– चित्त का एक देश में स्थिर रहना ही धारणा है अथवा चित्त को एक लक्ष्य पर केन्द्रित रखने की क्षमता का विकास ही धारणा है।

९– धारणा की स्थिति का अधिक स्थिर रहना ही ध्यान है। जब केवल अर्थमाथ भासित हो वही स्थिति समाधि है।

१०– योगदर्शन कार समाधि के निम्न रूप मानता है।

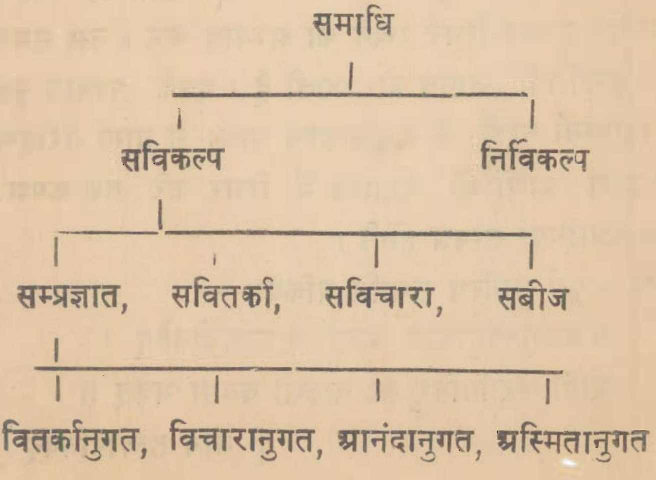

निर्विकल्प समाधि के भेद

- असम्प्रज्ञात
  - निर्वितका,
  - निर्विचारा
    - निर्बीज,
    - धर्ममेघ

निर्बीज समाधि ही सर्वोत्तम स्थिति है यही धर्ममेघ समाधि भी है।

११-समाधि विधिः—— समाधि सिद्ध करने के लिये भस्त्रिका प्राणायाम पूर्वक ७॥ पल (३ मिनिट) पर्यन्त आभ्यान्तर कुम्भक स्थिर रखने का अभ्यास करे। उस समय स्थूल कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है। इसके पश्चात् पूर्व मार्ग (सुषुम्ना नाड़ी के बङ्कनालस्थ मार्ग) से प्राण संरोहण क्रिया द्वारा प्राणों को ब्रह्माण्ड में स्थिर करे तब क्रमशः पूर्वोक्त समाधियां सम्पन्न होंगी।

अः -- पूर्व मार्गस्थ समाधि प्रक्रियाः——

अपानमूर्ध्वमुत्थाय प्राणं कण्ठादधोनयेत् ।
योगी जराविनिर्मुक्तः षोडशो वयसा भवेत् ॥

[योग तत्वोपनिषद]

मध्य शक्ति प्रबोधेन अधः शक्ति निकुञ्चनात् ।
ऊर्ध्व शक्ति निपातेन प्राप्यते परमं पदम् ॥

[सिद्ध सिद्धान्त पद्धति]

आः–पश्चिम मार्गस्थ समाधि विधिः-

७॥ पल पर्यन्त आभ्यान्तर कुम्भक का अभ्यास स्थिर होने पर आसनस्थ हो शनैः शनैः केवल कुम्भक की विधि से प्राणों को पश्चिम मार्ग (मेरु दण्डस्थ मार्ग) द्वारा ब्रह्माण्ड में स्थिर करे ।

इः–सूक्ष्म कुण्डलिनी के जागरण के उपरान्त ही प्राण सुषुम्णा नाड़ी में प्रविष्ट होता है ।

१२- धारणा, ध्यान तथा समाधि की क्रियात्मक स्थिर अवस्था का नाम संयम है ।

अः संयम के जय कर लेनें पर बुद्धि प्रकाश सम्पन्न हो जाती है ।

आः धर्म अवस्था और लक्षणों में चित्त का संयम करनें से भूत व भविष्यत् काल का ज्ञान हो जाता है ।

१३- योगदर्शन के व्यास भाष्य में महर्षि व्यास ने ३-४३ में तथा राजर्षि भोज ने भोजवृत्ति में परकाया प्रवेश

नामक सिद्धि को स्पष्ट रूप से माना है। विभूति पाद में समस्त शारीरिक विज्ञान तथा लोकालोक का ज्ञान अन्तर्निहित है। इस समस्त विज्ञान से समन्वित होकर योगी जीवन मुक्त हो जाता है तथा कैवल्य पाद में वर्णित मुक्ति प्राप्त करता है।

१४- साधक को अटूट साहस तथा दृढ़ निष्ठा पूर्वक निरन्तर साधना करते हुये योग्य आचार्य तथा ईश्वर में अगाध श्रद्धा रखनी चाहिये। आहारादि के संयम पूर्वक साधना को गुप्त रखने से निश्चित रूप १ वर्ष में विभूति पाद में वर्णित सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। योगाभ्यास किसी योग विद्या निष्णात् श्रोत्रिय एवम् ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के सानिध्य में रहकर ही करना चाहिये, अन्यथा हानि हो जाने की सम्भावना है।

[इति]

योग प्रशिक्षण क्रम

(आर्ष योग विद्यापीठ, खरखौदा, मेरठ, उत्तर प्रदेश का
पाठ्य-क्रम)

[लेखक :— श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ]

[सर्वाधिकार लेखकाधीन हैं]
[लेखन तिथि, १८ जनवरी १९६७ ई०]

प्रशिक्षण क्रम [पाठ्यक्रम]

प्रथम भाग

साधक कोटि   योग रत्न (उपाधि)

क्रिया भाग

१- नेति प्रशिक्षण:–

जलनेति, सूत्रनेति, कपाल भाति (वायुनेति)

स्नेहनेति (दुग्धनेति)

२- गणेश क्रिया, न्यौलि ।

३- धौति या कुञ्जर या गजकरणी ।

४- पद्मासन, सिद्धासन, शीर्षासन, सर्पासन ।

टिप्पणी: पद्मासन तथा सिद्धासन का २ घटिका पर्यन्त स्थिर रहने का अभ्यास ।

सिद्धान्त भाग

१- योगदर्शन का साधन पाद, व्यास भाष्य सहित ।

[सूत्र संख्या २६ से ४५ पर्यन्त]

प्रशिक्षण क्रम

द्वितीय भाग

साधक कोटि — योग विशारद (उपाधि)

क्रिया भाग

१- बस्ति, जल बस्ति, वायु बस्ति ।

या

२- शङ्ख प्रक्षालन ।

या

३- आसनः–

शलभासन, धनुरासन, हंसासन, मयूरासन, पश्चिमोत्तासन, सर्वाङ्गासन, हलासन, विपरीतकरणी मुद्रा, आकर्ण धनुरासन ।

४- मुद्रायें:–

महामुद्रा, महाबन्ध, महाबेध मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध ।

५- प्राणायामः–

रेचक, पूरक, कुम्भक [बाह्य कुम्भक तथा आभ्यान्तर कुम्भक]

अनुलोम विलोम, सूर्यभेदन, उज्जाई, शीतली, सीत्कारी, भस्त्रा, मूर्च्छा भ्रामरी, प्लाविनी ।

या

बाह्य, आभ्यान्तर, स्तम्भ वृत्ति, बाह्याभ्यान्तर विषया-क्षेपी ।

६- ध्यान योग की साधना, ४ घटिका पर्यन्त प्रतिदिन ।

सिद्धान्त भाग

१- योगदर्शन का व्यास भाष्य सहित समाधि पाद तथा साधन पाद ।

२- पञ्च कोष, अवस्थात्रय, एवम् शरीरत्रय विवेचन ।

३- श्वेताश्वतर उपनिषद् ।

प्रशिक्षण क्रम

तृतीय भाग

साधक कोटि — योग वाचस्पति (उपाधि)

क्रिया भाग

१-भस्त्रिका प्राणायाम द्वारा कुम्भक का अभ्यास न्यूनतम १२॥ पल (५ मिनिट) पर्यन्त प्रतिदिन ।

२- प्राण संयमन क्रिया का अभ्यास ।

२ घटिका पर्यन्त प्रतिदिन ।

या

३- केवली कुम्भक का अभ्यास ।

२ घटिका पर्यन्त प्रतिदिन ।

४- शक्तिचालन मुद्रा का अभ्यास ।

२ घटिका पर्यन्त प्रतिदिन ।

५- यम नियमादि का परीक्षण ।

६- प्रत्याहार का अभ्यास एवम् परीक्षण ।

७- भूचरी, चाचरी, अगोचरी, शाम्भवी तथा उन्मनी मुद्राओं का अभ्यास, खेचरी मुद्रा का अभ्यास ।

या

८- बज्रौली मुद्रा का अभ्यास ।

९- ध्यान योग का ४ घटिका पर्यन्त अभ्यास ।

सिद्धान्त भाग

१- योगदर्शन का व्यास भाष्य सहित समाधि पाद, साधन पाद तथा विभूति पाद ।

२- कठोपनिषद् तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् एवम् मुण्डकोपनिषद् का ध्यान योग का प्रकरण ।

३- जीवात्मा, परमात्मा सम्बन्धी विवेचन कठोपनिषद् तथा मुण्डकोपनिषद् से (मूल से) ।

४- ईशोपनिषद् (मूल) ।

प्रशिक्षण क्रम

चतुर्थ भाग

सिद्ध कोटि योग आचार्य (उपाधि)

प्रथम खण्ड

क्रिया भाग

१- प्राण संयमन क्रिया द्वारा ३ घटिका पर्यन्त धारणा स्थिति प्राण एक स्थान में स्थिर रखना ।

२- पश्चिम मार्गस्थ केवली कुम्भक द्वारा बल विशेष प्राप्त करना ।

३- प्राण संयमन क्रिया द्वारा ध्यान की स्थिति सम्पादन करना । ध्यान की स्थिति के लिये प्राण संयमन क्रिया ५ घटिका पर्यन्त करनी आवश्यक है ।

४- ३ घण्टे पर्यन्त प्राण संयमन क्रिया द्वारा समाधि का अभ्यास।

५- वायु भक्षण द्वारा आहार पूर्त्ति का अभ्यास।

६-निर्बीज समाधि का अभ्यास।

सिद्धान्त भाग

१- योगदर्शन, सम्पूर्ण व्यास भाष्य सहित।

२- योगतत्वोपनिषद्।

३- योगशिखोपनिषद्।

४- योग चूणामण्योपनिषद्।

५- श्वेताश्वतरोपनिषद्।

६- मुण्डकोपनिषद्।

प्रशिक्षण क्रम

पंचम भाग

सिद्ध कोटि योग आचार्य (उपाधि)

द्वितीय खण्ड

क्रिया भाग

१– निर्विकल्प समाधि का अभ्यास ।

२– अणिमादि विभूतियों का अनुभव एवम् परीक्षण ।

३– परकाया प्रवेश क्रिया का ज्ञान प्राप्त करना एवम् परीक्षण करना ।

४– समाधि में निरन्तर दो प्रहर पर्यन्त रहना ।

५– उन्मनी अवस्था का निरन्तर अभ्यास ।

सिद्धान्त भाग

१– योग दर्शन सम्पूर्ण, व्यास भाष्य एवम् भोजवृत्ति सहित (अध्ययन एवम् मनन) ।

२– योग उपनिषदों का अध्ययन ।

३– कैवल्योपनिषद् का अध्ययन ।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ द्वारा लिखित साहित्य:-

		मूल्य
१– योगानुक्रमणिका		१-०
२– आर्ष योगोपनिषद्		०-१५
३– वेदानुसार वास्तविक सृष्टि सम्वत्		०-१५
४– योगामृत रहस्य (३०० पृष्ठ)	(अप्रकाशित)	
५– भारत और गौ	(अप्रकाशित)	
६– मठ मञ्जरी	,,	
[शांकर मठाम्नाय]	(अप्रकाशित)	

उपरोक्त मुद्रित साहित्य "आश्रम सचिव" आनन्द निकेतन खरखौदा मेरठ, उत्तर प्रदेश से मंगावें। डाक व्यय मूल्य से पृथक होगा। पत्र व्यवहार भी जवाबी कार्ड पर ही करें।

इति समाप्त

श्री राजेन्द्र प्रसाद के प्रबन्ध से अनुपम प्रेस मेरठ में मुद्रित हुई।